उपसंहार

उपसंहार

हिंदी उपन्यास के विकास में मुस्लिम अस्मिता की अभिव्यक्ति का अवलोकन करने पर विभिन्न पड़ाव से गुजरते हुए कई महत्वपूर्ण तथ्यों की प्राप्ति होती है। हिंदी उपन्यास के विकास के प्रारंभिक चरण में साहित्य में मुस्लिम पात्र नदारद है। 'निःसहाय हिंदू' ऐसा पहला उपन्यास है जिसमें हिंदुओं की निःसहायता तथा मुसलमानों की धार्मिक कट्टरता को व्यक्त किया गया है। इस दृष्टि से यह पहला उपन्यास है जिसमें मुसलमान पात्र मौजूद हैं। दूसरे रचनाकार किशोरी लाल गोस्वामी जी हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में मुसलमान पात्रों का संयोजन किया है। प्रारंभिक दौर के उपन्यासों में रचनाकारों की पूर्वाग्रह से ग्रसित दृष्टि दिखाई देती है। प्रेमचंद युगीन उपन्यास में उपन्यासकार कथ्य और शिल्प की दृष्टि से प्रयोग करते दिखाई देते हैं। यहाँ उपन्यासों की विषय-वस्तु ही नहीं वरन् शिल्प तथा पात्र-संयोजन में परिवर्तन दिखाई देता है। प्रेमचंद अपने साहित्य में भारतीय समाज के वास्तविक स्वरूप को उजागर करते दिखाई देते हैं। इनका साहित्य किसी भी धर्म और जाति के पात्रों के प्रति किसी बनावटी संवेदना का संचार नहीं करता है। इनके पात्र चाहे वह हिंदू हों या मुसलमान अपनी पूरी सामाजिकता के साथ अभिव्यक्त होते हैं । इस क्रम में यशपाल, भैरव प्रसाद गुप्त, मोहन राकेश तथा भीष्म साहनी आदि का नाम लिया जा सकता है। इन रचनाकारों के लगातार प्रयास करने के बावजूद इनके साहित्य की सीमाएं हैं। जहाँ कई स्थानों पर मुस्लिम पात्र आए तो हैं लेकिन उनके व्यक्तित्व का विकास ठीक ढंग से नहीं दिखाई देता है। जैसे 'झूठा- सच' का असद ऐसा ही मुस्लिम पात्र है जिसके व्यक्तित्व को यशपाल संपूर्णता के साथ विकसित नहीं कर पाए हैं। ऐसे बहुत से उदाहरण इस दौर के साहित्य में मौजूद हैं।

हिंदी उपन्यास के इतिहास में मुस्लिम उपन्यासकारों का आगमन साठोत्तरी दौर में आरंभ होता है। इन उपन्यासकारों ने अपने जीवन की पीड़ा को साहित्य के माध्यम से उजागर किया है। निःसंदेह इन उपन्यासकारों पर उस दौर की संवेदना का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। भोगे हुए यथार्थ तथा अनुभव की प्रामाणिकता से गुजरते हुए हिंदी कथा साहित्य में यथार्थ का चित्रण लगातार

बदलता हुआ दिखाई देता है। चयनित उपन्यासों में जिन रचनाकारों ने लिखा है, उन सभी ने आजादी के पहले और बाद के भारतीय समाज को बहुत करीब से देखा और महसूस किया था। जिस तरह विभाजन की त्रासदी तथा धार्मिक अतिवादिता के दौर में समाज अपनी अस्मिता के भीतर सिमटा हुआ महसूस कर रहा था वह उल्लेखनीय है। इन रचनाकारों ने अपनी अस्मिता की सीमाओं को रेखांकित करने की कोशिश की। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों के साहित्य में भारतीय मुस्लिम समाज की पीड़ा गहरे रूप में चित्रित हुई है। हिंदी उपन्यास में साठ के पहले मुस्लिम समाज के परिवेश का संपूर्णता में चित्रण दिखाई नहीं देता है। इस क्रम में सन् 1965 में सर्वप्रथम शानी का 'काला जल' उपन्यास प्रकाशित होता है। इसके बाद राही मासूम रज़ा, बदीउज़्ज़माँ, इब्राहीम शरीफ़ तथा मेहरुन्निसा परवेज़ जैसे रचनाकार आते हैं। इनके साहित्य में मुस्लिम समाज के जिस यथार्थ को व्यक्त किया गया है उसमें अनुभव और भोगे हुए यथार्थ का बोध होता है। यहाँ इस समुदाय की समस्याएँ तथा कमियों को पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया गया है। जिस धर्म का सहारा लेकर अलगाववादी शक्तियों के द्वारा इन्हें विभाजन की त्रासदी का शिकार बनाया गया, उसके कट्टर स्वरूप की यह लगातार आलोचना करते दिखाई देते हैं। चयनित उपन्यासों में अधिकांश के साहित्य में आजादी के पहले तथा बाद की परिस्थितियों को कथा में पिरोने की कोशिश की गई है। विभाजन की त्रासदी इसकी केंद्रीय विषय-वस्तु बन जाती है। विभाजन की घटना भारतीय समाज को सिर्फ राजनीतिक रूप से ही नहीं वरन् भावनात्मक रूप से अलगाने का काम करती है। कहना न होगा कि आजादी के बाद हुए इस क्रूरतम विभाजन ने लाखों लोगों के जीवन को बदलकर रख दिया। इस राजनीतिक परिघटना के केंद्र में हाशिये के समाज को सबसे अधिक नुकसान पहुँचा। 'छाको की वापसी' का छाको हो या 'आधा गाँव' का हाकिम हो सभी विभाजन की कीमत चुका रहे हैं। स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों के साहित्य में सबसे अधिक पीड़ा इस बात को लेकर दिखाई देती है कि भारतीय समाज में उन्हें शक की निगाह से देखा जाता है। उनकी वतनपरस्ती पर सवाल उठाया जाता है। इस तरह देखा जा सकता

है कि जब मुस्लिम रचनाकार रचनात्मकता के क्षेत्र में आते हैं तब इस समाज की संवेदना की अभिव्यक्ति अधिक प्रामाणिक ढंग से होती है।

इन चयनित उपन्यासों में स्त्रियों की स्थिति पर बहुत गहराई से विचार किया गया है। सामाजिक रूढ़िवादिता तथा धार्मिक कट्टरता के दौर में सबसे अधिक समाज के दोयम दर्जे पर मौजूद वर्ग प्रताड़ित होता है। इस क्रम में आजादी के बाद का समय भारतीय समाज के लिए गहरे रूप से परिवर्तन का युग माना जा सकता है। यह वह दौर था जब शिक्षा का कोई गहरा प्रभाव समाज पर नहीं पड़ रहा था। अधिकांश शिक्षित समूहों में समाज और परिवार के सामंती मूल्यों का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है जो पितृसत्तात्मकता के साये में पुष्पित-पल्लवित होता है। इन सामंती मूल्यों का सबसे अधिक प्रभाव स्त्रियों को अपना शिकार बनाता है। ऐसा माना जा सकता है कि स्त्री का कोई धर्म नहीं होता। विभाजन की त्रासदी के बीच भटकती औरतों का कोई सहारा नहीं रहा। इस समय के साहित्य में जिन स्त्रियों का उल्लेख किया गया हैं उनमें धर्मांतरित पात्रों की संख्या अधिक है। राही मासूम रज़ा, शानी तथा मेहरुन्निसा परवेज़ आदि की रचनाओं में मुस्लिम स्त्रियों के दर्द को बयान किया गया है। अशिक्षा तथा सामाजिक, परिवारिक दबाव में यह औरतें अनचाहे गर्भ तथा पुत्र प्राप्ति के यंत्र के समान चित्रित की गयीं। इन रचनाकारों ने जिस तरह स्त्रियों के दर्द को बयान किया है वह सिर्फ मुस्लिम समाज तक सीमित नहीं है। भारतीय सामंती और पितृसत्तात्मक समाज की औरतों के जीवन के यथार्थ के साथ उसका गहरा संबंध बनता दिखाई देता है।

लेखकों का मानना है कि आजादी के बाद अधिकांश शिक्षित तथा आर्थिक रूप से सम्पन्न मुसलमान पाकिस्तान चले गये। यहाँ रह गये मुसलमानों में अधिकांश आर्थिक रूप से कमजोर थे। इस पक्ष को रचनाकारों ने अपने उपन्यासों में बखूबी उभारा है। ‘छाको की वापसी’ उपन्यास में हबीब भाई जैसे समृद्धशाली मुसलमान बेहतर अवसर की तलाश में पाकिस्तान चले जाते हैं। भारत में रहने वाले मुसलमानों की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी जिसके कारण इन्हें

सामाजिक और राजनीतिक प्रतिनिधित्व कम मिलता है। परिणामस्वरूप यह वर्ग लगातार कमजोर पड़ता चला गया। लगातार भेद-भाव का शिकार होने के कारण इनमें सरकारी नौकरियों के प्रति भी कोई खास रूचि नहीं रह गयी। सच्चर कमिटी की रिपोर्ट से इस बात की पुष्टि होती है कि यह स्वरोजगार में अधिक रूचि लेते हैं। अनुकूल परिवेश के अभाव में मुस्लिम समाज लगातार अलगाव का शिकार होता चला गया।

भारतीय मुस्लिम समाज के भीतर जातिगत संरचना का विश्लेषण आवश्यक है। हिंदू समाज की तरह भारतीय मुस्लिम समाज में जाति के आधार पर भेद-भाव को इन उपन्यासकारों ने रेखांकित किया है। मुस्लिम समाज जाति के आधार पर मुख्यतः तीन भागों में विभक्त है- प्रथम अशराफ द्वितीय अजलाफ़ तथा तृतीय अरजाल। जो मुसलमान दूसरे देशों से भारत में आये हैं वह अशराफ कहलाते हैं। यह जाति ऊँची जाति मानी जाती है जिसमें सैयद, मुगल तथा पठान आदि आते हैं। इसके अलावा इस वर्ग में वह मुसलमान भी आते हैं जो हिन्दुओं की ऊँची जाति से धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बने हैं। अजलाफ में अंसारी, मंसूरी, राइन, कुरैशी, दरजी बढ़ई तथा चरवाहा आदि जातियाँ शामिल हैं। इनमें मुख्य रूप से निचली जातियों से धर्मांतरित मुसलमानों को शामिल किया गया है। इसमें वे दलित हिंदू आते हैं जो धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बने थे। इनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं देखी जाती है। 'आधा गाँव' उपन्यास में राही मासूम रज़ा दिखाते हैं कि गाँव के सैयद मासूम जब निचली जातियों के लड़कों के साथ कबड्डी खेलता है तब उसे समझाया जाता है कि इन निचली जातियों के लड़कों के साथ सैयद खानदान के लोग नहीं खेलते हैं। 'छाकों की वापसी' उपन्यास में भी खाजे बाबू के पिता उसे यह कहते हैं कि छाको नीची जाति का कमीना लड़का है उसके साथ न खेलो। स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों ने भारतीय समाज में व्याप्त जाति की समस्या को बहुत बारीकी से प्रस्तुत किया है। इस्लाम में जहाँ यह माना जाता है कि किसी प्रकार की जाति तथा ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं है वहाँ इन उपन्यासों में धर्मांन्तरित दलित जातियों के जीवन का दर्द उजागर हो गया है। यह रेखांकित करने

योग्य है कि इन रचनाकारों ने अपने समाज और धर्म में व्याप्त विसंगतियों को संजीदगी के साथ साहित्य में चित्रित किया है।

स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम उपन्यासकारों की भाषा सरल, सहज एवं लयात्मक है। इन उपन्यासकारों की भाषा में गाँव की मिट्टी की सौंधी खुशबू समाहित नज़र आती है। राही जी के उपन्यासों में भोजपुरी, उर्दू, अरबी-फारसी तथा बीच-बीच में अंग्रेजी के शब्दों का भी सफल प्रयोग देखने को मिलता है। शानी की भाषा में अधिक मिश्रण नहीं है परन्तु सार्थक शब्दों का प्रयोग एवं मर्यादित ढंग से परिवेश का चित्रण उनके उपन्यास की विशेषता है। बदीउज़्ज़माँ के उपन्यासों में भी गंवई भाषा का प्रयोग हुआ है। मगही भाषा के सुन्दर प्रयोग ने 'छाको की वापसी' उपन्यास को महत्वपूर्ण एवं रोचक बना दिया है। भाषा के साथ ही इन उपन्यासों का शिल्प भी सुन्दर एवं गठा हुआ है। नई तकनीक के प्रयोग से उपन्यास और अधिक सुन्दर हो गया है। इन उपन्यासकारों की ख़ास विशेषता यह है कि ये सभी पारम्परिक शिल्प की जगह नए शिल्प को अपनाते हैं। मेहरुन्निसा के उपन्यास 'आँखों की दहलीज' में पारम्परिक शिल्प का प्रयोग हुआ है।